अवसान / सुषम बेदी

जिस तरह से दिवाकर जीता जा रहा था उसे बिलकुल अंदाज़ नहीं था कि कल को वह इस दुनियाँ में नहीं होगा। यों तो अपने जाने की ख़बर किसी को नहीं होती पर उसे ख़ासतौर से नहीं थी।

इसकी जायज़ वजह भी थी उसके पास। पहली बात तो यह कि जिस संसार के सर्वोन्नत देश में वह रह रहा था वहाँ छप्पन सत्तावन साल की उम्र जीवन का मध्य माना जाता है, अंत का सूचक नहीं। फिर सामान्य तौर पर उसकी सेहत भी ठीक-ठाक रहती थी। दूसरों की बीमारियाँ ठीक करते-करते अपनी नश्वरता की चिन्ता करने की भी फ़ुरसत नहीं मिलती थी उसको।

यही बात मानकर उसने पचासवें में कदम रखते ही तीसरी शादी की थी। यों शादी तलाक आम बाते हैं इस देश में। पर वह यहाँ के अनलिखे नियमों के अनुसार हर सात साल बाद तलाक करता था और तलाक के पाँच साल के बाद ही अगली शादी। इस तरह उसके पाँच बच्चे भी पैदा हो चुके थे। जिनमें से चार अपनी अपनी दुनिया में थे। छे साल का छोटा लड़का उसकी तीसरी पत्नी हेलन से था।

शहर के प्रमुख चर्च में हो रही इस अंतिम क्रिया में शहर भर के तमाम लोग जमा थे। फूलों के ढेर सारे गुलदस्ते हॉल को महकाए थे, जिनकी ताज़गी और महक से मौत का अभिषेक किया जा रहा था। उन फूलों की जीवंतता देखते-देखते सहसा मौत से ध्यान हट जाता था। पर फिर महज उन फूलों की उपस्थिति मात्र ही उसका बरबस ध्यान दिला डालती थी। एक बड़े से लकड़ी के बक्से में रखा फूलों से ही सजा ढका दिवाकर का जीवन रिक्त शरीर मृत्यु के घट जाने को भुलावा कैसे दे सकता था?

पादरी बाइबल के सफों से डेविड का स्लाम पढ़ रहा था, ''प्रभु मेरा चरवाहा है तो मुझे क्या कमी है, वह मुझे हरियाले मैदानों में लेटाता है, शांत जल की ओर ले जाता है वही मेरी आत्मा की रक्षा करता है और मुझे सही रास्ता दिखाता है।''
पादरी की आवाज़ में शांति है स्थिर जल की ही तरह।
आवाज़ में दिलासा है कयामत का दिन स्वर्ग की कामना : मुक्त के लिए इतरलोक के श्रेयस्कर की कामना जीवितों के लिए एक लचर-सी तसल्ली।
लोग मौत की अवश्यंभाविता से डरे, ख़ामोश, अपनी अपनी कुर्सियों पर अवस्थित।

शंकर को अजीब लग रहा था कि एक केवल वही हिन्दुस्तानी था। बाकी सब दिवाकर के डाक्टरी पेशे से जुड़े लोग थे - अस्पताल के साथी, कर्मचारी, डाक्टर, नर्सें, मरीज़ इसमें काले, हिस्पैनिक और गोरे सभी किस्म के लोग मौजूद थे। पिछले तीस बरसों से तो वह यहाँ काम कर रहा था। इसी शहर के सबसे बड़े अस्पताल का प्रमुख डाक्टर था। कितने ही मरीज़ों ने इससे जीवन पाया था जो हमेशा के लिए उसके शुक्रगुज़ार थे।
उसकी तीनों पत्नियों के परिवार भी मौजूद थे।

दर असल पहले की दोनों पत्नियों के परिवारों और उनसे जन्मे अपने बच्चों के साथ अब भी उसका रिश्ता बना हुआ था। अभी भी वह उन बच्चों के कालेजों की फीस दे रहा था। उनके जन्मदिनों पर उपहार भेजता था और उन्हें खाने पर बाहर रेस्ट्राँ ले जाता था पर बच्चे फिर भी उसके न थे। वह उनके जीवन में एक बाहरी तत्व था। जो किसी देनदार रिश्तेदार की तरह अपनी भलमनसाहत की वजह से मदद किए जा रहा था। इसके एवज में उसे उन बच्चों से प्यार नहीं मिलता था। हाँ वक्त पर पैसा न पहुँचने की शिकायत ज़रूर मिल

जाती थी पर बेशक वे उससे उपकृत ज़रूर महसूस करते होंगे तभी उसके जन्मदिन या क्रिसमस पर वे उसे शुभकामनाओं का कार्ड ज़रूर भेज देते थे। आज भी वे सभी बच्चे अपनी माओं के परिवारों के साथ अंत्येष्टि में आए हुए थे।

पर उसके अपने परिवार का कोई भी उसके मृत्यु संस्कार पर मौजूद नहीं था। रिश्तेदार भारत में ही थे। यों उनमें अब उसकी माँ और बहन ही बची थीं। यहीं पर कुछ मित्र थे जिनसे मिलना जुलना चलता रहता था।

वह ज़्यादा हिन्दोस्तानियों से नहीं मिलता था। पत्नी अमरीकी थी तो दोस्तों का समूह भी वैसा ही था। शंकर ही उसका करीबी हिन्दोस्तानी मूल का दोस्त था। दोनों मौलाना आज़ाद मेडिकल स्कूल के दिनों से ही एक दूसरे को जानते थे। उनकी आजतक दोस्ती बने रहने की शायद यह वजह भी थी कि शंकर की अमरीकी पत्नी के साथ उसकी पत्नी की निकटता थी। गोरों में आना जाना भी था और बच्चों का भी आपस में मिलना-मिलाना था।

अस्पताल से ही लाश सीधे फ्यूनेरल गृह में लाई गई थी और आज गिरिजाघर में सर्विस थी।
वह नास्तिक था। इसलिए उसकी इसाई पत्नी को ऐसा करने में कुछ गलत नहीं लगा। दोनों की शादी भी कोर्ट में ही हुई थी। यों भी वह कहाँ किसी मंदिर के पुजारी को खोज कर क्रियाकर्म करवाती। शंकर ने कहा तो था कि वह पंडित का इंतज़ाम कर देगा। अब तो यहाँ काफी लोग बस गए हैं। अच्छा पंडित भी ढूँढ़ा जा सकता है।

पर हेलन एकदम नर्वस होकर बोली थी, ''प्लीज़ शंकर उस बखेड़े में मत डालो मुझे। जो ज़िन्दा होते हुए कभी हिन्दू नहीं बना अब उस पर यह सब यों लादना ज़रूरी है?''

''लेकिन...'' और शंकर कुछ कह नहीं पाया था। विवाद का मौका नहीं था। वह दोस्त की पत्नी के लिए चीज़ों को आसान बनाना चाहता था। पहले ही शोक से सतायी हुई महिला को और कष्ट में नहीं डालना चाहता था। मुश्किल से सात साल तो हुए थे उसकी शादी को। दोनों का प्रेम विवाह था। हेलन दिवाकर से करीब बीस साल छोटी रही होगी। क्या पता था कि इतनी कम देर जीना था उसे? अचानक उसकी ज़िन्दगी में तो तूफ़ान आ गया था।

पर शंकर को मन में लगा था कि ब्राह्मण परिवार में पैदा होने वाला उसका दोस्त दिवाकर क्या इस इंतज़ाम से संतुष्ट होगा। शंकर खुद भी नास्तिक ही था पर फिर भी यह मानता था कि जो हिन्दू पैदा हुआ है वह हिन्दू ही रहता है सो देह संस्कार किसी भी दूसरे तरीके से क्यों?

लेकिन उसकी पत्नी ने भी हेलन की हाँ में हाँ मिलाते हुए कह डाला था कि यह तो ख़ाली सुविधा की बात है। चर्च का सारा इंतज़ाम साफ़ सुथरा था। वहाँ तो आए दिन फ्यूनेरल सर्विस होती ही हैं। आनेवालों को भी सुविधा रहेगी। पहचानी जगह है और फिर मंदिर कौन से इस तरह के कामों में अनुभवी हैं फालतू में ही घचपच होगी। हवन वगैरह की किसी को समझ भी नहीं। फिर उसके मित्र भी ज़्यादातर तो अमरीकी ही हैं। किसको समझ में आएँगे संस्कृत के श्लोक।

मन ही मन शंकर को दिवाकर पर गुस्सा भी आ रहा था। यों ही अचानक बिना बताए चल दिया यह सब तो उसके साथ डिस्कस करके जाना था। अब शंकर न तो उसकी पत्नी पर किसी तरह का ज़ोर डालना चाहता था न ही दोस्त से दग़ाबाज़ी।
यों नास्तिक होते भी दोनों ने गीता महाभारत रामायण सब पढ़ रखे थे। गीता के तो कई श्लोक दोनों को ज़बानी रटे थे।

बल्कि अपनी ज़िन्दगी में संतुलन बनाए रखने के लिए कभी-कभी वे एक दूसरे के व्यवहार पर श्लोकों के ज़रिये टिप्पणी करते थे जैसे कि शंकर उसे कहता था, ''भाई ये सारे बच्चों की कालेज और स्कूल की पढ़ाई का इतना भारी खर्च तुम्हारा सच्चा निष्काम कर्म ही मानना चाहिए। वर्ना बीवी को छोड़ने पर बच्चों को इतना सर चढ़ाने की क्या ज़रूरत है। तुम तो अभी भी पूरी निष्ठा से लगे हो।

दिवाकर हँसा था, ''सबके अपने अपने कर्मों का फल है। वे अपने हक का ले रहे हैं और मैं अपना धर्म निभा रहा हूँ। फिर जब सात समंदर पार आकर मेरा धर्म तो भ्रष्ट हो ही गया है। उसकी एवज़ में इतनी दौलत आ रही है तो वे भी क्यों न उसका सुख भोगें। शायद यहीं कुछ खटकर अपनी योनि सुधार लूँ।''

एक बार किसी बात पर बड़ा गुस्सा था शंकर तो दिवाकर गीता के दूसरे अध्याय का बासठवाँ श्लोक गाने लगा था, ''क्रोध से संमोह होता है और संमोह से स्मृतिनाश, स्मृति न रहने से विचार शक्ति का नाश होता है और बुद्धिनाश से सर्वनाश।'' शंकर का गुस्सा दूर करने के लिए ही इस बाण का प्रयोग किया गया था और इसका असर हुआ भी।

पर यह सब बौद्धिक प्रयास ही था। किसी आस्था का सबूत नहीं। बस अजीब बात यह थी कि खुद को नास्तिक कह कर भी उनकी शब्दावली, संदर्भ, सब हिन्दू शास्त्रों से ही जुड़े थे। और यह सब अनायास होता था।

मूल बात यह थी कि दिवाकर के समूचे व्यक्तित्व में एक उदारता थी। हर तरह के देने में खुलापन था। प्यार पैसा सलाह - यह और बात है कि अमरीकी पत्नियाँ होने के कारण वह अपने हिन्दुस्तान में बसे घरवालों को अपने यहाँ ज़्यादा बुला न पाता था पर वक्त बेवक्त पैसों की खुली मदद ज़रूर देता था। खुद जाकर उन्हें मिल भी आता था।
शंकर से हेलन ने ख़ास इल्तजा की थी, '' क्या तुम उसकी माँ बहन को आने से रोक सकते हो? मुझ पर सबसे बड़ा उपकार यही होगा?''

शंकर को एकदम से धक्का लगा था। शायद यह समझ कर ही हेलन ने कहा था, ''देखो शंकर एक तो यहाँ का ही मुझे सब कुछ अपने से सँभालना होता है ऊपर से माँ बहन के आने से मुझे उनकी भी सेवा परवरिश में लगना होगा। मैं इस वक्त तन और मन हर तरह से बहुत कमज़ोर महसूस कर रही हूँ फिर अब जब कि दिवाकर रहा ही नहीं तो मुझसे उन सबकी देखभाल का बोझ नहीं उठाया जाएगा। यों भी कौन सा ज़्यादा मिलना जुलना था। पाँच पाँच साल बाद तो मुश्किल से वह घर जाता था। और व्यक्तिगत रूप से मेरा तो उनसे कुछ लेना देना था नहीं। मैं तो एक बार से ज़्यादा उनसे कभी मिली ही नहीं।''

शंकर ने कहा, ''वो तो तुम सही कह रही हो हेलन पर वे इसरार तो करेंगे ही। आखिर बेटे या भाई का चला जाना, मौत पर वे आना तो चाहेंगे ही। सगे तो ऐसे मौकों पर आते ही हैं।''
हेलन बोली, ''मेरे पास पैसे नहीं हैं उनकी टिकटें भेजने के।''
''वह मैं दे दूँगा। वे शायद माँगेगे भी नहीं पैसे उनके पास भी काफी हैं। फिर कोई पैसे की परवाह नहीं करता ऐसे मौके पर।''

''तभी तो तुमसे कह रही हूँ वे तो आने को तैयार बैठी हैं। तुम उसके करीबी दोस्त थे। तुम्हारी बात वे समझ लेंगी। मैंने बार-बार उनसे न आने को कहा है पर वे सोचती हैं कि मैं औपचारिक हो रही हूँ। जैसे भी समझाऊँ उनको समझ भी नहीं आता।''
''हेलन वे लोग तुमसे चाहे न भी मिलना चाहें पर उन्हें पोते पोतियों से तो मिलना होगा।''
''से मैं उसे छुट्टियों में भारत भिजवा दूँगी। उसकी पहली बीवियाँ जो करना चाहें करें मैं अपने बेटे का तो वचन देती हूँ उनसे मिलने

ज़रूर भेज दूँगी। पर तुम किसी तरह अभी उनका आना रोक लो।''
और शंकर ने फोन पर कहानियाँ गढ़ कर रोक लिया था।
''हेलन को रोज़ काम पर जाना होगा। उसकी तबियत भी ठीक नहीं है। बेचारी बहुत अकेली पड़ गई है।''
''बच्चों के भी स्कूल खुले हैं। उनकी ज़िन्दगी में खलल डालना सही नहीं होगा।''

''आप लोग यहाँ आकर करेंगी क्या? सब तो कामों में बिज़ी होंगे। फिर हवाई अड्डे से लाना ले जाना खिलाना-पिलाना ये सब बन्दोबस्त भी तो हेलन को करने होंगे। ऐसी हालत में कैसे कर पाएगी बेचारी। पहले से ही उसका अपना हाल बुरा है। आखिर उसके लिए तो भरी जवानी में ही पति चल बसा। पहले खुद को तो सँभाले औरों की ज़िम्मेवारी कैसे ले पाएगी।''
''दिवाकर तो चला गया जिसके साथ नाता था, उठना-बैठना था अब यहाँ किसके लिए आएँगी।''
''बच्चे आपसे मिलने आएँगे छुट्टियों में। तब साथ वक्त बिताने का भी मौका मिलेगा। कुछ धैर्य से काम लें। जो गया वह तो लौटेगा नहीं।''

मन में बहुत कष्ट हुआ था शंकर के। पर वह हेलन का नज़रिया भी समझता था। बेचारी कैसे सँभालेगी उन पक्की हिन्दोस्तानी सास ननद को। छूतछात, शाकाहारी, पता नहीं कितने तो झमेले होंगे। उसकी अपनी पत्नी जैकी भी तो कितनी नवर्स होती है उसको घर वालों से मिलकर। लाख ख़याल रखने पर भी उससे कोई न कोई गल्ती हो ही जाती है। कभी पल्ला ठीक नहीं लिया तो कभी पाय-हाथ नहीं लगाया। वह तो खुद इन चक्करों से परेशान हो अकेले ही जाकर माँ से मिल आता है। शुरू में जैकी भी गई थी उसके साथ। अब वह भी अपने कामों में उलझी रहती है और वे दोनो अपनी-अपनी छुट्टियाँ अपनी-अपनी मर्ज़ी से बिताते थे। साल दो साल में एक बार बच्चों के साथ पारिवारिक छुट्टी वहीं अमरीका या यूरोप वगैरह में मनाई जाती थी। पिछली बार वह बेटी को साथ ले गया था दादी से मिलवाने। पर बच्चे हर बार साथ चलना भी नहीं चाहते। उनके हम-उम्र साथी न हों तो उन्हें कहीं भी जाना भला नहीं लगता।

शंकर ने दुबारा ग़ौर किया उस दोस्त के अंतिम संस्कार पर एक भी हिन्दोस्तानी नहीं था और शंकर को बहुत अजीब सा लग रहा था। उसके कान जैसे किन्ही मंत्रोच्चार के लिए खुले बैठे थे, आँखें जैसे आग की लपटों के लिए आकुल। नासिकाओं में घी और सामग्री की चिकनी गंध कुलबुला रही थी।

पर गिरजाघर के हाल में इस पर पादरी की आवाज़ गूँज रही थी।
शंकर उस सारे माहौल में बड़ा कुंठित-सा हो रहा था। उसके मन की बात कोई नहीं कह रहा था। वह उस सारे आयोजन में दृष्टा की तरह था। किसी से कुछ बाँट ही नहीं पा रहा था। कितना कुछ तो था उन दोनों के बीच जो अभी भी साँस ले रहा था। शंकर की आँखों के आगे वह नज़ारा घूम गया। जब वह इस शहर की ज़मीन पर पहली बार उतरा था हवाई जहाज़ से। दिवाकर ही उसे हवाई अड्डे पर लेने पहुँचा हुआ था। शुरू के कुछ दिन उसी के घर टिका था। वहीं उसकी अमरीकी गर्लफ्रेंड से भी मुलाक़ात हुई थी। उन दिनों शहर में कोई भी हिन्दोस्तानी रेस्ट्राँ नहीं होता था। भारतीय खाने की हुड़क उठती तो खुद ही जुगाड़ करना पड़ता। बस दोनों छड़े छड़ांग तरह-तरह के खानों के प्रयोग में जुट जाते। हिन्दोस्तानी खाना पकाने और अस्पताल के कर्मचारियों के साथ व्यवहार के तौर तरीकों से लेकर लड़कियों से डेटिंग तक हर चीज़ में वही शंकर का गुरु था। यों वह था तो शंकर से एक ही साल बड़ा पर हर बात में अगुआ। उन दिनों इस शहर में गिनेचुने ही हिन्दोस्तानी रहते थे। इसीलिए एक दूसरे का साहचर्य और भी ज़्यादा कीमती था। हर बात में एक दूसरे से सलाह, एक दूसरे की चाह। कालेज के दिनों की दोस्ती और भी गहरी जड़ें जमाती गई थी।

शहर की स्मृति उसे और भी दूर और भी पीछे ले जाती जा रही थी। दिल्ली के तालकटोरा ग्राउंड में यूथ फेस्टिवल चल रहा था। उन्नीस बरस के शंकर ने ज़िन्दगी में पहली बार एक लड़की को चूमा था और आसमान में उड़ता हुआ धरती पर उतर ही नहीं पा रहा था। तब दिवाकर ने कत्थे चूने वाला पान उसके मुँह में डाल कर कहा था, ''ले खा ले नशा कुछ नीचे उतरेगा।''

दिवाकर ने ही उसे कविता और संगीत की ओर खींचा था। डाक्टरी की दुनियाँ में उलझे शंकर को कभी भी इनकी ख़बर नहीं रही। दिवाकर ने उसे गालिब पढ़वाया था टैगोर की कविता की खूबसूरती पहचाननी सिखाई थी। और रवींद्र संगीत की कोई भी कंपोज़ीशन वह दिवाकर को याद किए बिना सुन नहीं सकता था। उनके इतवारों की दुपहरियाँ और शामें ज़्यादातर हिन्दुस्तानी संगीत सुनने में ही निकलती थीं।

अब शंकर के भीतर ही सबकुछ कसमसा रहा था।
पादरी ओल्ड टेस्टामेंट की पंक्तियाँ पढ़ रहा था, ''राख से राख धूल से धूल जिस मिट्टी से निकले हैं उसी में मिल जाना है।''
सहसा कोई साँप-सा सरक गया शंकर की रीढ़ पर से। जैसे कोई मनोमन मिट्टी के नीचे उसे दफ्न किए दे रहा हो। अजीब-सी घुटन हुई उसे।
हॉल में एकदम खामोशी थी। इस पर पादरी के शब्द कानों के परदों से टकरा रहे थे।

कुछ गूँज रहा था शंकर के भीतर ब्रजने लगा था उसकी शिराओं में कितना कुछ संचित, अरसे से अर्जित, गुना-मथा हुआ, कहीं दबा छुपा हुआ...

पादरी आमेन करके डायस से नीचे उतरने ही वाला था कि शंकर सहसा खड़ा हो गया। और तेज़ लेकिन सधे कदमों से चला। लोग उसे देख रहे थे। हल्की-सी हलचल मची। लोग हैरान पर चुप थे।

बहुत संयत आवाज़ में शंकर ने कहा, ''अपने दोस्त के लिए कुछ गीता के श्लोक और उसने संस्कृत और अंग्रेज़ी अनुवाद करते हुए एक के बाद एक श्लोक उच्चरित करने शुरू कर दिए। गीता के दूसरे अध्याय के श्लोक थे ये, ''ये न कभी हत होता है न हत्यारा, न कभी जन्मता है न विनशता, जन्म मरन से परे देह नाश होने पर भी नष्ट नहीं होता, जिस तरह घिसे हुए वस्त्रों का त्याग कर नर नए धारण करता है उसी तरह घिसी देह का त्याग कर नई अपनाता है देही।

सब उसी ख़ामोशी से सुन रहे थे जिस खामोशी से पादरी को सुना था। शंकर का संस्कृत का उच्चारण भी बहुत कर्णमृदु था। पर फिर भी लोग उस तरह सहज नहीं थे जैसे अब तक थे। शायद उन स्वरों की ध्वनियाँ उन्हें अजनबी लग रही होंगी। पर फिर भी उन ध्वनियों में सत्व था, आग्रह था, सबने सुना और चुपचाप अपनी जगह टिके हुए सुनते रहे।

शंकर की निगाह अपनी पत्नी से मिली भौंचक्की-सी देख रही थी वह उसे। समझ नहीं पा रही थी शायद कि दाद दे या हैरान हो। उसकी हिम्मत सराहे या इस अटपटे व्यवहार पर डपट लगाए। शंकर को लगा कि वहाँ जैकी नहीं, हेलन ही खड़ी है।

एक डरावनी-सी काली छाया उसके शरीर को दो टुकड़ों में काटती चली गई। सामने कुछ नहीं दिखता था अब। बस अंधेरे का गढ़ा काला गोल।
पता नहीं कितनी-कितनी परछाइयों से लड़ रहा था उसका अवचेतन।

शंकर को लगा उसकी आवाज़ ख़ामोश हो रही है। उसके कान में फिर से पादरी की आवाज़ बजने लगी मिट्टी से बन कर मिट्टी में ही मिल जाना है, उसे लगा जैसे वह अपना ही अवसान देख रहा है, इसी तरह, ठीक इसी तरह उसकी पत्नी गिरजाघर की दीवारें, लंबी रंगीन खिड़कियाँ, बाइबल की पंक्तियाँ, अनजाने चेहरों का सैलाब, डरे हुए पस्त चेहरे, धूल और मिट्टी के अंतहीन अंबार।

और उसने फिर से ज़ोर लगाया, पल भर को वह कुछ और देख सुन नहीं पा रहा था, फिर सहसा जैसे पानी को काटता हुआ कोई जलपोत उसके अधरों से फिर से फूट निकला काट न सकते शस्त्र आत्मा को आग न कभी इसे जलाती विकृति रहित है अविचल आत्मा जन्म नित्य है तो मरन नित्य।

अचानक उसे लगा ताबूत में ख़ामोश लेटे दिवाकर का चेहरा उसकी ओर देख कर मुस्कुराया है। शंकर को रोंगटे खड़े हो गए। पल के भी छोटे से हिस्से में उसे महसूस हुआ कि दिवाकर कहीं नहीं गया, यहीं है, उसके आस पास। पर वह मुस्कान थी या खिल्ली इसका फैसला शंकर नहीं कर पाया।

हॉल में अब लौटने वालों के पैरों और धीमी-धीमी बातों का शोर शुरू हो गया था। शंकर की आवाज़ शोर में डूब चुकी थी पर उसे लग रहा था कि अपनी आवाज़ वह अभी भी सुन पा रहा है।